जैनधर्म सम्पूर्ण प्रकृति हितैषी

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

जैनधर्म सम्पूर्ण प्रकृति हितैषी है। जैनधर्म में अहिंसा को बहुत महत्व दिया गया है। प्रकृति के कण–कण में जीव है, ऐसी जैनधर्म की मान्यता है। जैनधर्म में परस्परोपग्रहोजीवानाम् अर्थात् सभी भूतों में जीवदर्शन किया गया है। इसमें षडजीवनिकाय का वर्णन किया गया है। षड्जीवनिकाय के अन्तर्गत पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक जीवों की गणना होती है। षड्जीवनिकाय का संरक्षण पर्यावरण की सुरक्षा के लिए बहुत ही आवश्यक है। प्राचीनकाल में पर्यावरण शुद्धि के लिए प्रकृति की पूजा की जाती थी। उस समय प्रकृति और मानव के बीच में संतुलन बना हुआ था। आजकल प्रकृति का अंधाधुध दोहन पर्यावरण में असंतुलन पैदा कर दिया है। जिसका परिणाम अतिवृष्टि और अनावृष्टि, ऊष्मा और ताप का बढ़ना और घटना, वैश्विक परिदृश्य में ताप का बढ़ना और घातक बीमारियों का होना है।

जीवन का अस्तित्व प्राकृतिक तत्त्वों के संतुलन पर टिका है। जिस वातावरण से पृथ्वी घिरी है उस वातावरण में प्रत्येक तत्त्व एक अनुपात में है। यदि इस अनुपात में एक सीमा से अधिक अन्तर पड़ जाये तो जीवन समाप्त भी हो सकता है। पर्यावरण के निर्माण में पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश वनस्पति, मानव तथा मानवेतर सभी प्राणियों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। पर्यावरण की सुरक्षा के लिये केवल इतना समझना आवश्यक नहीं है कि प्रकृति हमारे लिये उपयोगी है। समझना यह है कि हम प्रकृति के एक अवयव हैं। जिस प्रकार हममें जीवन है उसी प्रकार प्रकृति के प्रत्येक कण–कण में जीवन है। मानव प्रकृति की उपेक्षा करके अपने अस्तित्त्व को नहीं बचा सकता।

वृक्षों और मनुष्यों में समान जीव की कल्पना की गयी है। भगवान महावीर का दृष्टिकोण वृक्षों के प्रति आध्यात्मिक भाव से सम्पन्न था। इसलिए वनस्पतियों और वृक्षों की पूजा होती थी।

उपभोक्तावादी संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के कारण मनुष्य अपने पुराने आदर्शों और परम्पराओं को भूलकर प्राकृतिक तत्त्वों का अन्धाधुन्ध दोहन कर रहा है। आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का उपयोग मानव के अनैतिक आचरण का परिणाम है।

जैनधर्म में पर्यावरण के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण प्राकृतिक उपादानों का संरक्षण किया जाता था। इसी आध्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण जैनधर्म में वनस्पति की तुलना मनुष्यों से की गयी है। जैनधर्म में कहा है जैसे मनुष्य का शरीर जन्मधर्मा है, वैसे ही वनस्पति का शरीर भी जन्म धर्मा है। जैसे मनुष्य का शरीर बढ़ता है, वैसे ही वनस्पति का शरीर भी बढ़ता है। जैसे मनुष्य का शरीर चैतन्य युक्त है, वैसे ही वनस्पति भी चैतन्ययुक्त है। जैसे मनुष्य का शरीर छिन्न होने पर म्लान होता है, वैसे ही वनस्पति भी छिन्न होने पर म्लान होती है। मनुष्य का शरीर भी आहार करता है, वनस्पति भी आहार करती है। मनुष्य शरीर भी अनित्य है, वनस्पति भी अनित्य है। मनुष्य शरीर भी अशाश्वत है, वनस्पति भी अशाश्वत है। इस प्रकार मानव शरीर के साथ वनस्पति जीवों की तुलना सर्वांगीण रूप से होती है।

जैनधर्म में पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति को जीव माना गया है। ये सभी मिलकर पर्यावरण की रचना करते हैं तथा संतुलन बनाये रखने के लिए एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। किसी एक तत्त्व के असंतुलन से समूचा पर्यावरण प्रभावित होता है। अतः भगवान महावीर ने कहा विवेकी मनुष्य, पृथ्वी, पानी आदि की हिंसा के परिणाम को जानकर न स्वयं इनकी हिंसा करें, न दूसरों से इनकी हिंसा करवाएँ और न ही हिंसा करने वालों का अनुमोदन करें। पृथ्वी, पानी आदि की हिंसा करने वाला केवल इनकी ही हिंसा नहीं करता अपितु इनके आश्रित अनेक त्रस जीवों की भी हिंसा करता है। इन षड्जीवनिकायों की हिंसा नहीं करने के सन्दर्भ में जैनधर्म के जो निर्देश है, वे पर्यावरण को प्रदूषण से मुक्त रखने की दृष्टि से सर्वाधिक मूल्यवान हैं।

पृथ्वी ही जिनका शरीर है ऐसे जीवों को पृथ्वीकायिक जीव कहा जाता है। वह अनेक जीव और पृथक् सत्वों वाली है। शस्त्र परिणति से पूर्ण वह सजीव कही गयी है। आज अनेक प्रकार के खनिज पदार्थों के लिए पृथ्वीकाय की हिंसा की जाती है। हजारों मिलियन कचरा, मल आदि जल में फेंका जा रहा है, जिससे जलकाय की तो हिंसा होती ही है किन्तु उससे वह

जल भी प्रदूषित होता है। जल में रहने वाले जीव, जैसे मछली एवं अन्य प्राणी उस प्रदूषण से प्रभावित होते हैं। अग्निकाय का असंयम करने से ऊर्जा के स्रोत कम हो रहे हैं। इससे उद्योग, चिकित्सा आदि सभी क्रियाकलाप प्रभावित हो रहे हैं।

वायु–प्रदूषण में भी अग्निकाय का असंयम ही अधिक निमित्त बन रहा है। वायुमण्डलीय प्रदूषण केवल मानव के लिए ही नहीं अपितु प्राणी मात्र के लिए हानिकारक है। पर्यावरण संतुलन का एक महत्त्वपूर्ण उपाय है इच्छाओं का संयम। जैनाचार्यों ने कहा व्यक्ति की इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं, वे कभी पूरी नहीं होती। व्यक्ति की आवश्यकताएँ सीमित हैं, पर असीम इच्छाओं की पूर्ति के लिए वह प्रकृति के साथ छेड़छाड़ करता है। परिणामस्वरूप प्रकृति असंतुलित होती है। प्रकृति में इतनी क्षमता है कि वह संसार के सभी प्राणियों का भरण–पोषण कर सकती है।